यतींद्र मिश्र

यतींद्र मिश्र का जन्म सन् 1977 में अयोध्या, उत्तरप्रदेश में हुआ । उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ से हिंदी भाषा और साहित्य में एम० ए० किया । वे साहित्य, संगीत, सिनेमा, नृत्य और चित्रकला के जिज्ञासु अध्येता हैं । वे रचनाकार के रूप में मूलत: एक कवि हैं । उनके अबतक तीन काव्य-संग्रह : 'यदा-कदा', 'अयोध्या तथा अन्य कविताएँ', और 'ड्योढ़ी पर आलाप' प्रकाशित हो चुके हैं । कलाओं में उनकी गहरी अभिरुचि है । इसका ही परिणाम है कि उन्होंने प्रख्यात शास्त्रीय गायिका गिरिजा देवी के जीवन और संगीत साधना पर एक पुस्तक 'गिरिजा' लिखी । भारतीय नृत्यकलाओं पर विमर्श की पुस्तक है 'देवप्रिया', जिसमें भरतनाट्यम और ओडिसी की प्रख्यात नृत्यांगना सोनल मान सिंह से यतींद्र मिश्र का संवाद संकलित है । यतींद्र मिश्र ने स्पिक मैके के लिए 'विरासत 2001' के कार्यक्रम के लिए रूपंकर कलाओं पर केंद्रित पत्रिका 'थाती' का संपादन किया है । संप्रति, वे अर्द्धवार्षिक पत्रिका 'सहित' का संपादन कर रहे हैं । वे साहित्य और कलाओं के संवर्धन एवं अनुशीलन के लिए एक सांस्कृतिक न्यास 'विमला देवी फाउंडेशन' का संचालन 1999 ई० से कर रहे हैं ।

यतींद्र मिश्र ने रीतिकाल के अंतिम प्रतिनिधि कवि द्विजदेव की ग्रंथावली का सह-संपादन भी किया है । उन्होंने हिंदी के प्रसिद्ध कवि कुँवरनारायण पर केंद्रित दो पुस्तकों के अलावा हिंदी सिनेमा के जाने-माने गीतकार गुलजार की कविताओं का संपादन 'यार जुलाहे' नाम से किया है । यतींद्र मिश्र को अबतक भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार, भारतीय भाषा परिषद् युवा पुरस्कार, राजीव गाँधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार, रजा पुरस्कार, हेमंत स्मृति कविता पुरस्कार, ऋतुराज सम्मान आदि कई पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं । उन्हें केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी, नयी दिल्ली और सराय, नई दिल्ली की फेलोशिप भी मिली है ।

'नौबतखाने में इबादत' प्रसिद्ध शहनाईवादक भारतरत्न उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ पर रोचक शैली में लिखा गया व्यक्तिचित्र है । इस पाठ में बिस्मिल्ला खाँ का जीवन - उनकी रुचियाँ, अंतर्मन की बुनावट, संगीत की साधना आदि गहरे जीवनानुराग और संवेदना के साथ प्रकट हुए हैं ।

नौबतखाने में इबादत

सन् 1916 से 1922 के आसपास की काशी। पंचगंगा घाट स्थित बालाजी मंदिर की ड्योढ़ी। ड्योढ़ी का नौबतखाना और नौबतखाना से निकलनेवाली मंगलध्वनि।

कमरूद्दीन अभी सिर्फ छह साल का है और बड़ा भाई शम्सुद्दीन नौ साल का। कमरूद्दीन को पता नहीं है कि राग किस चिड़िया को कहते हैं। और ये लोग हैं मामूजान वगैरह जो बात-बात पर भीमपलासी और मुलतानी कहते रहते हैं। क्या वाजिब मतलब हो सकता है इन शब्दों का, इस लिहाज से अभी उम्र नहीं है कमरूद्दीन की, जान सके इन भारी शब्दों का वजन कितना होगा। गोया इतना जरूर है कि कमरूद्दीन व शम्सुद्दीन के मामाद्वय सादिक हुसैन तथा अलीबख्श देश के जाने-माने शहनाई वादक हैं। विभिन्न रियासतों के दरबार में बजाने जाते रहते हैं। रोजनामचे में बालाजी का मंदिर सबसे ऊपर आता है। हर दिन की शुरुआत वहीं ड्योढ़ी पर होती है। मंदिर के विग्रहों को पता नहीं कितनी समझ है, जो रोज बदल-बदलकर मुलतानी, कल्याण, ललित और कभी भैरव रागों को सुनते रहते हैं। ये खानदानी पेशा है अलीबख्श के घर का। उनके अब्बाजान भी यहीं ड्योढ़ी पर शहनाई बजाते रहते हैं।

कमरूद्दीन का जन्म डुमराँव, बिहार के एक संगीत प्रेमी परिवार में 1916 ई० में हुआ। 5-6 वर्ष डुमराँव में बिताकर वह नाना के घर, ननिहाल काशी में आ गये। शहनाई और डुमराँव एक-दूसरे के लिए उपयोगी थे। शहनाई बजाने के लिए रीड का प्रयोग होता है। रीड अंदर से पोली होती है जिसके सहारे शहनाई को फूँका जाता है। रीड, नरकट (एक प्रकार की घास) से बनाई जाती है जो डुमराँव के आसपास की नदियों के कछारों में पाई जाती है। फिर कमरूद्दीन ही अपने उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ साहब थे। इनके परदादा उस्ताद सलार हुसैन खाँ डुमराँव निवासी थे। बिस्मिल्ला खाँ उस्ताद पैगंबरबख्श खाँ और मिट्ठन के छोटे साहबजादे थे।

बिस्मिल्ला खाँ की उम्र मात्र 14 साल। वही पुराना बालाजी का मंदिर जहाँ बिस्मिल्ला खाँ को नौबतखाने रियाज के लिए जाना पड़ता। मगर एक रास्ता है बालाजी मंदिर तक जाने

का । यह रास्ता रसूलनबाई और बतूलनबाई के यहाँ से होकर जाता है । इस रास्ते से कमरूद्दीन को जाना अच्छा लगता । इस रास्ते न जाने कितने तरह के बोल-बनाव कभी ठुमरी, कभी टप्पे, कभी दादरा के मार्फत ड्योढ़ी तक पहुँचते रहते । रसूलन और बतूलन जब गाती, तब कमरूद्दीन को खुशी मिलती । अपने ढेरों साक्षात्कारों में बिस्मिल्ला खाँ साहब ने स्वीकार किया है कि उन्हें अपने जीवन के आरंभिक दिनों में संगीत के प्रति आसक्ति इन्हीं गायिका बहिनों को सुनकर हुई । एक प्रकार से उनकी अबोध उम्र में अनुभव की स्लेट पर संगीत प्रेरणा की वर्णमाला रसूलनबाई और बतूलनबाई ने उकेरी ।

वैदिक इतिहास में शहनाई का कोई उल्लेख नहीं मिलता । इसे संगीत शास्त्रांतर्गत 'सुषिर-वाद्यों' में गिना जाता है । अरब देश में फूँककर बजाए जाने वाले वाद्य जिसमें नाड़ी (नरकट या रीड) होती है, को 'नय' बोलते हैं । शहनाई को 'शाहेनय' अर्थात् 'सुषिर वाद्यों में शाह' की उपाधि दी गई है । सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के तानसेन के द्वारा रची बंदिश, जो संगीत राग कल्पद्रुम से प्राप्त होती है, में शहनाई, मुरली, वंशी,शृंगी एवं मुरछंग आदि का वर्णन आया है ।

अवधी पारंपरिक लोकगीतों एवं चैती में शहनाई का उल्लेख बार-बार मिलता है । मंगल का परिवेश प्रतिष्ठित करने वाला यह वाद्य इन जगहों पर मांगलिक विधि-विधानों के अवसर पर ही प्रयुक्त हुआ है । दक्षिण भारत के मंगल वाद्य 'नागस्वरम्' की तरह शहनाई, प्रभाती की मंगलध्वनि का संपूरक है ।

शहनाई की इसी मंगलध्वनि के नायक बिस्मिल्ला खाँ साहब दशकों से सुर माँग रहे हैं । सच्चे सुर की नेमत । पाँचों वक्त वाली नमाज इसी सुर को पाने की प्रार्थना में खर्च हो जाती । लाखों सज्दे, इसी एक सच्चे सुर की इबादत में खुदा के आगे झुकते । वे नमाज के बाद सज्दे में गिड़गिड़ाते - 'मेरे मालिक एक सुर बख्श दे । सुर में वह तासीर पैदा कर कि आँखों से सच्चे मोती की तरह अनगढ़ आँसू निकल आएँ । उनको यकीन था, कभी खुदा यूँ ही उन पर मेहरबान होगा और अपनी झोली से सुर का फल निकालकर उनकी ओर उछालेगा, फिर कहेगा, ले जा कमरूद्दीन इसको खा ले और कर ले अपनी मुराद पूरी ।

अपने ऊहापोहों से बचने के लिए हम स्वयं किसी शरण, किसी गुफा को खोजते हैं जहाँ अपनी दुश्चिंताओं, दुर्बलताओं को छोड़ सकें और वहाँ से फिर अपने लिए एक नया तिलिस्म गढ़ सकें । हिरन अपनी ही महक से परेशान पूरे जंगल में उस वरदान को खोजता है जिसकी गमक उसी में समाई है । कई दशक तक बिस्मिल्ला खाँ यही सोचते आए कि सातों सुरों को बरतने की तमीज उन्हें सलीके से अभी तक क्यों नहीं आई ।

बिस्मिल्ला खाँ और शहनाई के साथ जिस मुस्लिम पर्व का नाम जुड़ा हुआ है, वह मुहर्रम है । मुहर्रम का महीना वह होता है जिसमें शिया मुसलमान हज़रत इमाम हुसैन एवं उनके कुछ वंशजों के प्रति अजादारी (शोक मनाना) मनाते हैं । पूरे दस दिनों का शोक । वे बताते कि उनके खानदान का कोई व्यक्ति मुहर्रम के दिनों में न तो शहनाई बजाता, न ही किसी संगीत के

कार्यक्रम में शिरकत ही करते। आठवीं तारीख उनके लिए खास महत्त्व की होती थी। इस दिन खाँ साहब खड़े होकर शहनाई बजाते व दालमंडी में फातमान के करीब आठ किलोमीटर की दूरी तक पैदल रोते हुए, नौहा बजाते जाते। इस दिन कोई राग नहीं बजता। राग-रागिनियों की अदायगी का निषेध है इस दिन।

उनकी आँखें इमाम हुसैन और उनके परिवार के लोगों की शहादत में नम रहतीं। अजादारी होती। हजारों आँखें नम। हजार बरस की परंपरा पुनर्जीवित। मुहर्रम संपन्न होता। एक बड़े कलाकार का सहज मानवीय रूप ऐसे अवसर पर आसानी से दिख जाता था।

मुहर्रम के गमजदा माहौल से अलग, कभी-कभी सुकून के क्षणों में वे अपनी जवानी के दिनों को याद करते। वे अपने रियाज़ को कम, उन दिनों के अपने जुनून को अधिक याद करते। अपने अब्बाजान और उस्ताद को कम, पक्का महाल की कुलसुम हलवाइन की कचौड़ी वाली दुकान व गीताबाली और सुलोचना को ज्यादा याद करते। कैसे सुलोचना उनकी पसंदीदा हीरोइन रही थीं, बड़ी रहस्यमय मुस्कराहट के साथ गालों पर चमक आ जाती थी। खाँ साहब की अनुभवी आँखें और जल्दी ही खिस्स से हँस देने की ईश्वरीय कृपा बदस्तूर कायम रही।

इसी बालसुलभ हँसी में कई यादें बंद थीं। वे जब उनका जिक्र करते तब फिर उसी नैसर्गिक आनंद में आँखें चमक उठतीं। कमरुद्दीन तब सिर्फ चार साल के रहे होंगे। छुपकर नाना को शहनाई बजाते हुए सुनते थे, रियाज़ के बाद जब अपनी जगह से उठकर चले जाएँ तब जाकर ढेरों छोटी-बड़ी शहनाइयों की भीड़ से अपने नाना वाली शहनाई ढूँढ़ते और एक-एक शहनाई को फेंक कर खारिज करते जाते, सोचते 'लगता है मीठी वाली शहनाई दादा कहीं और रखते हैं।' जब मामू अलीबख्श खाँ (जो उस्ताद भी थे) शहनाई बजाते हुए सम पर आएँ, तब धड़ से एक पत्थर जमीन पर मारते थे। सम पर आने की तमीज उन्हें बचपन में ही आ गई थी, मगर बच्चे को यह नहीं मालूम था कि दाद वाह करके दी जाती है, सिर हिलाकर दी जाती है, पत्थर पटक कर नहीं। और बचपन के समय फिल्मों के बुखार के बारे में तो पूछना ही क्या? उस समय थर्ड क्लास के लिए छह पैसे का टिकट मिलता था। कमरुद्दीन दो पैसे मामू से, दो पैसे मौसी से और दो पैसे नानी से लेता था फिर घंटों लाइन में लगकर टिकट हासिल करते थे।

इधर सुलोचना की नई फ़िल्म सिनेमाहॉल में आई और उधर कमरुद्दीन अपनी कमाई लेकर चले फिल्म देखने जो बालाजी मंदिर पर रोज़ शहनाई बजाने से उन्हें मिलती थी। एक

अठन्नी मेहनताना । उस पर यह शौक जबरदस्त कि सुलोचना की कोई नई फिल्म न छूटे और कुलसुम की देशी घी वाली दुकान । वहाँ की संगीतमय कचौड़ी । संगीतमय कचौड़ी इस तरह क्योंकि कुलसुम जब कलकलाते घी में कचौड़ी डालती थी,उस समय छन्न से उठने वाली खाली आवाज में उन्हें सारे आरोह अवरोह दिख जाते थे । राम जाने, कितनों ने ऐसी कचौड़ी खाई होगी । मगर इतना तय है कि अपने ख़ाँ साहब रियाज़ी और स्वादी दोनों थे और इस बात में कोई शक नहीं कि दादा की मीठी शहनाई उनके हाथ लग चुकी थी ।

काशी में संगीत आयोजन की एक प्राचीन एवं अद्भुत परंपरा रही है । यह आयोजन पिछले कई दशकों से संकटमोचन मंदिर में होता आया है । यह मंदिर शहर के दक्षिण में लंका पर स्थित है व हनुमान जयंती के अवसर यहाँ पाँच दिनों तक शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय गायन-वादन की उत्कृष्ट सभा होती है । इसमें बिस्मिल्ला खाँ अवश्य रहते थे । अपने मजहब के प्रति अत्यधिक समर्पित उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ की श्रद्धा काशी विश्वनाथ जी के प्रति भी अपार थी । वे जब भी काशी से बाहर रहते तब विश्वनाथ व बालाजी मंदिर की दिशा की ओर मुँह करके बैठते, थोड़ी देर ही सही, मगर उसी ओर शहनाई का प्याला घुमा दिया जाता और भीतर की आस्था रीड के माध्यम से बजती । खाँ साहब की एक रीड 15 से 20 मिनट के अंदर गीली हो जाती थी तब वे दूसरी रीड का इस्तेमाल कर लिया करते थे ।

अक्सर कहते - " क्या करें मियाँ, ई काशी छोड़कर कहाँ जाएँ, गंगा मइया यहाँ, बाबा विश्वनाथ यहाँ, बालाजी का मंदिर यहाँ, यहाँ हमारे खानदान की कई पुश्तों ने शहनाई बजाई है, हमारे नाना तो वहीं बालाजी मंदिर में बड़े प्रतिष्ठित शहनाईबाज रह चुके हैं । अब हम क्या करें, मरते दम तक न यह शहनाई छूटेगी न काशी । जिस जमीन ने हमें तालीम दी, जहाँ से अदब पाई, वो कहाँ और मिलेगी ? शहनाई और काशी से बढ़कर कोई जन्नत नहीं इस धरती पर हमारे लिए ।"

काशी संस्कृति की पाठशाला है । शास्त्रों में आनंदकानन के नाम से प्रतिष्ठित । काशी में कलाधर हनुमान व नृत्य-विश्वनाथ हैं । काशी में बिस्मिल्ला खाँ थे। काशी में हजारों सालों का इतिहास है जिसमें पंडित कंठे महाराज थे, विद्याधरी थे, बड़े रामदास जी थे, मौजुद्दीन खाँ थे व इन रसिकों से उपकृत होने वाला अपार जन समूह । यह एक अलग काशी है जिसकी अलग तहजीब है, अपनी बोली और अपने विशिष्ट लोग हैं । इनके अपने उत्सव हैं , अपना गम । अपना सेहरा-बन्ना और अपना नौहा । आप यहाँ संगीत को भक्ति से, भक्ति को किसी भी धर्म के कलाकार से, कजरी को चैती से, विश्वनाथ को विशालाक्षी से, बिस्मिल्ला खाँ को गंगाद्वार से अलग करके नहीं देख सकते ।

अक्सर समारोहों एवं उत्सवों में दुनिया कहती ये बिस्मिल्ला खाँ हैं । बिस्मिल्ला खाँ का मतलब-बिस्मिल्ला खाँ की शहनाई । शहनाई का तात्पर्य-बिस्मिल्ला खाँ का हाथ । हाथ से आशय इतना भर कि बिस्मिल्ला खाँ की फूँक और शहनाई की जादुई आवाज का असर हमारे सिर चढ़कर

बोलने लगता । शहनाई में सरगम भरा है । खाँ साहब को ताल मालूम, राग मालूम । ऐसा नहीं कि बेताल जाएँगे । शहनाई में सात सुर लेकर निकल पड़े । शहनाई में परवरदिगार, गंगा मइया, उस्ताद की नसीहत लेकर उतर पड़े । दुनिया कहती-सुबहान अल्लाह, तिस पर बिस्मिल्ला खाँ कहते – अलहमदुलिल्लाह ! छोटी-छोटी उपज से मिलकर बड़ा आकार बनता है । शहनाई का करतब शुरू होने लगता । बिस्मिल्ला खाँ का संसार सुरीला होना शुरू हुआ । फूँक में अजान की तासीर उतरती चली गई। देखते-देखते शहनाई डेढ़ सतक के साज से दो सतक का साज बन, साजों की कतार में सरताज हो गई । कमरूद्दीन की शहनाई गूँज उठी । उस फकीर की दुआ लगी जिसने कमरूद्दीन से कहा था – "बजा, बजा ।"

किसी दिन एक शिष्या ने डरते-डरते खाँ साहब को टोका, "बाबा ! आप यह क्या करते हैं इतनी प्रतिष्ठा है आपकी । अब तो आपको 'भारतरत्न' भी मिल चुका है, यह फटी तहमद न पहना करें । अच्छा नहीं लगता, जब भी कोई आता है आप इसी फटी तहमद में सबसे मिलते हैं । " खाँ साहब मुस्कराए । लाड़ से भरकर बोले, " धत् ! पगली ई भारतरत्न हमको शहनईया पे मिला है, लुंगिया पे नाहीं । तुम लोगों की तरह बनाव सिंगार देखते रहते तो उमर ही बीत जाती, हो चुकती शहनाई । तब क्या खाक रियाज हो पाता । ठीक है बिटिया, आगे से नहीं पहनेंगे, मगर इतना बताए देते हैं कि मालिक से यही दुआ है, फटा सुर न बख्शें । लुंगिया का क्या है, आज फटी है तो कल सिल जाएगी।"

सन् 2000 की बात है । पक्का महाल (काशी विश्वनाथ से लगा हुआ इलाका) से मलाई बरफ बेचनेवाले जा चुके हैं । खाँ साहब को इसकी कमी खलती है। अब देशी घी में वह बात कहाँ और कहाँ वह कचौड़ी-जलेबी । खाँ साहब को बड़ी शिद्दत से कमी खलती है । अब संगतियों के लिए गायकों के मन में कोई आदर नहीं रहा । खाँ साहब अफसोस जताते हैं । अब घंटों रियाज को कौन पूछता है ? हैरान हैं बिस्मिल्ला खाँ । कहाँ वह कजली, चैती और अदब का जमाना ?

सचमुच हैरान करती है काशी । पक्का महाल से जैसे मलाई बरफ गया, संगीत, साहित्य और अदब की बहुत सारी परंपराएँ लुप्त हो गईं । एक सच्चे सुर साधक और सामाजिक की भाँति बिस्मिल्ला खाँ साहब को इन सबकी कमी खलती थी । काशी में जिस तरह बाबा विश्वनाथ और बिस्मिल्ला खाँ एक-दूसरे के पूरक रहे, उसी तरह मुहर्रम-ताजिया और होली-अबीर, गुलाल की गंगा-जमुनी संस्कृति भी एक-दूसरे के पूरक रहे हैं । अभी जल्दी ही

बहुत कुछ इतिहास बन चुका है। अभी आगे बहुत कुछ इतिहास बन जाएगा। फिर भी कुछ बचा है जो सिर्फ काशी में है। काशी आज भी संगीत के स्वर पर जगती और उसी की थापों पर सोती है। काशी में मरण भी मंगल माना गया है। काशी आनंदकानन है। सबसे बड़ी बात है कि काशी के पास उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ जैसा लय और सुर की तमीज सिखाने वाला नायाब हीरा रहा है जो हमेशा से दो कौमों को एक होने व आपस में भाईचारे के साथ रहने की प्रेरणा देता रहा।

भारतरत्न से लेकर इस देश के ढेरों विश्वविद्यालयों की मानद उपाधियों से अलंकृत व संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार एवं पद्मविभूषण जैसे सम्मानों से नहीं, बल्कि अपनी अजेय संगीतयात्रा के लिए बिस्मिल्ला खाँ साहब भविष्य में हमेशा संगीत के नायक बने रहेंगे। नब्बे वर्ष की भरी-पूरी आयु में 21 अगस्त 2006 को संगीत रसिकों की हार्दिक सभा से हमेशा के लिए विदा हुए खाँ साहब की सबसे बड़ी देन यही है कि सारी उम्र उन्होंने संगीत को संपूर्णता व एकाधिकार से सीखने की जिजीविषा अपने भीतर जिंदा रखी।

◆◆◆

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. डुमराँव की महत्ता किस कारण से है ?
2. सुषिर वाद्य किन्हें कहते हैं । 'शहनाई' शब्द की व्युत्पत्ति किस प्रकार हुई है ?
3. बिस्मिल्ला खाँ सजदे में किस चीज के लिए गिड़गिड़ाते थे ? इससे उनके व्यक्तित्व का कौन-सा पक्ष उद्घाटित होता है ?
4. मुहर्रम पर्व से बिस्मिल्ला खाँ के जुड़ाव का परिचय पाठ के आधार पर दें ।
5. 'संगीतमय कचौड़ी' का आप क्या अर्थ समझते हैं ?
6. बिस्मिल्ला खाँ जब काशी से बाहर प्रदर्शन करते थे तो क्या करते थे ? इससे हमें क्या सीख मिलती है ?
7. 'बिस्मिल्ला खाँ का मतलब – बिस्मिल्ला खाँ की शहनाई ।' एक कलाकार के रूप में बिस्मिल्ला खाँ का परिचय पाठ के आधार पर दें ।
8. **आशय स्पष्ट करें –**

   (क) फटा सुर न बख्शें । लुंगिया का क्या है, आज फटी है, तो कल सिल जाएगी ।

   (ख) काशी संस्कृति की पाठशाला है ।
9. बिस्मिल्ला खाँ के बचपन का वर्णन पाठ के आधार पर दें ।

पाठ के आस-पास

1. बिस्मिल्ला खाँ मुर्हरम की आठवीं तारीख को केवल नौहा बजाते थे, कोई राग-रागिनी नहीं । क्यों, मालूम करें ।
2. इस पाठ में किन फिल्म कलाकारों के नाम आए हैं । आप उनकी फिल्मों के नाम मालूम करें । उन कलाकारों की तस्वीरें भी इकट्ठी करें ।
3. बिस्मिल्ला खाँ को फिल्मों का शौक था, आप उनके इस शौक को किस तरह देखते हैं और क्यों ?

भाषा की बात

1. **रचना के आधार पर निम्नलिखित वाक्यों की प्रकृति बताएँ –**

   (क) काशी संस्कृति की पाठशाला है ।

   (ख) शहनाई और डुमराँव एक-दूसरे के लिए उपयोगी हैं ।

   (ग) एक बड़े कलाकार का सहज मानवीय रूप ऐसे अवसरों पर आसानी से दिख जाता है ।

   (घ) उनको यकीन है, कभी खुदा यूँ ही उन पर मेहरबान होगा ।

(ङ) धत् ! पगली ई भारतरत्न हमको शहनईया पे मिला है, लुंगिया पे नाहीं ।

2. निम्नलिखित वाक्यों से विशेषण छाँटिए -

(क) इसी बालसुलभ हँसी में कई यादें बंद हैं ।

(ख) अब तो आपको भारतरत्न भी मिल चुका है, यह फटी तहमद न पहना करें ।

(ग) शहनाई और काशी से बढ़कर कोई जन्नत नहीं इस धरती पर हमारे लिए ।

(घ) कैसे सुलोचना उनकी पसंदीदा हीरोइन रही थीं, बड़ी रहस्यमय मुस्कराहट के साथ गालों पर चमक आ जाती है ।

शब्द निधि :

ड्योढ़ी	:	दहलीज
नौबतखाना	:	प्रवेश द्वार के ऊपर मंगल ध्वनि बजाने का स्थान
रियाज	:	अभ्यास
मार्फत	:	द्वारा
शृंगी	:	सींग का बना वाद्ययंत्र
मुरछंग	:	एक प्रकार का लोक वाद्ययंत्र
नेमत	:	ईश्वर की देन, वरदान, कृपा
सज़दा	:	माथा टेकना
इबादत	:	उपासना
तासीर	:	गुण, प्रभाव, असर
श्रुति	:	शब्द-ध्वनि
ऊहापोह	:	उलझन, अनिश्चितता
तिलिस्म	:	जादू
गमक	:	खुशबू, सुगंध
अजादारी	:	मातम करना, दुख मनाना
बदस्तूर	:	कायदे से, तरीके से
नैसर्गिक	:	स्वाभाविक, प्राकृतिक
दाद	:	शाबाशी, प्रशंसा, वाहवाही
तालीम	:	शिक्षा
अदब	:	कायदा, साहित्य
अलहमदुलिल्लाह	:	तमाम तारीफ ईश्वर के लिए
जिजीविषा	:	जीने की इच्छा
शिरकत	:	शामिल होना
वाजिब	:	सही, उपयुक्त
मतलब	:	अर्थ
लिहाज	:	शिष्टाचार, छोटे-बड़े के प्रति उचित भाव

ABDIEL SOLUTIONS ABSOL *PATNA*

गोया	:	जैसे कि, मानो कि
रोजनामचा	:	दैनंदिन, दिनचर्या
विग्रह	:	मूर्ति
कछार	:	नदी का किनारा
उकेरी	:	चित्रित करना, उभारना
संपूरक	:	पूरा करने वाला, पूर्ण करने वाला
मुराद	:	आकांक्षा, अभिलाषा
दुश्चिंता	:	बुरी चिंता
बरतना	:	बर्ताव करना, व्यवहार करना
सलीका	:	शिष्ट तरीका
गमजदा	:	गम में डूबा
सुकून	:	शांति, आराम
जुनून	:	उन्माद, सनक
खारिज	:	अस्वीकार करना
आरोह	:	चढ़ाव
अवरोह	:	उतार
आनंदकानन	:	ऐसा बागीचा जिसमें आठों पहर आनन्द रहे
उपकृत	:	उपकार करना, कृतार्थ करना
तहजीब	:	संस्कृति, सभ्यता
सेहरा-बन्ना	:	सेहरा बाँधना, श्रेय देना
नौहा	:	शहनाई
सरगम	:	संगीत के सात स्वर (सा रे ग म प ध नी)
नसीहत	:	शिक्षा, उपदेश, सीख
तहमद	:	लुंगी, अधोवस्त्र
शिद्दत	:	असरदार तरीके से, जोर के साथ
सामाजिक	:	सुसंस्कृत
नायाब	:	अद्भुत, अनुपम
जिजीविषा	:	जीने की लालसा

यह भी जानें

सम	–	ताल का एक अंग, संगीत में वह स्थान जहाँ लय की समाप्ति और ताल का आरंभ होता है।
श्रुति	–	एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाते समय का अत्यंत सूक्ष्म स्वरांश ।
वाद्ययंत्र	–	हमारे देश में वाद्य यंत्रों की मुख्य चार श्रेणियाँ मानी जाती हैं - **तत-वितत** - तार वाले वाद्य – वीणा, सितार, सारंगी, सरोद

सुषिर - फूँक कर बजाए जाने वाले वाद्य - बाँसुरी, शहनाई, नागस्वरम्, बीन

घनवाद्य - आघात से बजाए जाने वाले धातु वाद्य - झाँझ, मंजीरा, घुँघरू

अवनद्ध - चमड़े से मढ़े वाद्य - तबला, ढोलक, मृदंग आदि ।

चैती - एक तरह का चलता गाना ।

चैती

चढ़ल चइत चित लागे ना रामा
बाबा के भवनवा
बीर बमनवा सगुन बिचारो
कब होइहैं पिया से मिलनवा हो रामा
चढ़ल चइत चित लागे ना रामा

ठुमरी - एक प्रकार का गीत जो केवल एक स्थायी और एक ही अंतरे में समाप्त होता है ।

ठुमरी

बाजुबंद खुल-खुल जाए
जादू की पुड़िया भर-भर मारी
हे ! बाजुबंद खुल-खुल जाए

टप्पा - यह भी एक प्रकार का चलता गाना ही कहा जाता है । ध्रुपद एवं ख्याल की अपेक्षा जो गायन संक्षिप्त है, वही टप्पा है ।

टप्पा

बागाँ विच आया करो
बागाँ विच आया करो
मक्खियाँ तों डर लगदा
गुड़ जरा कम खाया करो ।

दादरा - एक प्रकार का चलता गाना । दो अर्द्धमात्राओं के ताल को भी दादरा कहा जाता है ।

दादरा

तड़प-तड़प जिया जाए
साँवरिया बिना
गोकुल छाड़े मथुरा में छाए
किन संग प्रीत लगाए
तड़प-तड़प जिया जाए

❑❑❑